जागे पावन प्रेरणा

आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का

जागे पावन प्रेरणा

विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी

जागे पावन प्रेरणा

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय ..... **अ**

भूमिका ..... **इ**

विपश्यना कारगर हुई **१-५८**

१. अमर निर्वाण की सच्चाई ३
२. तपन बुझी ९
३. यह क्षण १२
४. नया संकल्प १४
५. सम्यक संकल्प १६
६. अपूर्व प्रेरणा २०
७. गिरो और उठो २१
८. जलधारा रुक गयी २३
९. चुटकी भर सरसों २९
१०. वस्त्राभूषण की गठरी ३६
११. वासना-विमुक्ति का मार्ग ४१
१२. अमृतमयी वाणी ४४
१३. धर्म-धारणा ४५
१४. सविवेक श्रद्धा ५०
१५. दो अतियों के बीच ५४

एक राजघराने की धर्मचेतना **५९-१०३**

१. मगध का भाग्य जागा ६१
२. रूप गर्विता खेमा ७०
३. वाणी कल्याणी ७६
४. सुपटिवेधन ८१
५. अभय अभय हुआ ८४
६. एक और जिज्ञासा ८९
७. देख देह की गंदगी ९३

दान का फल ९६
८. अभया भव-भय से छुटी ९८
९. राजकुमार सीलवा १००

धर्म-मैत्री १०५-१३३

१. धन्य है मैत्री भावना.....१०७
२. अनमोल भेंट ११२
३. पुक्कुसाति कथा.....११५
(क) धरम रतन उपहार.....११५
(ख) चला त्याग कर राज्यसुख.....१२१
(ग) हुई मित्रता फलवती.....१२८

सार्थक जीवन १३५-२०३

१. देखने में केवल देखना १३७
२. निंदा हो या प्रशंसा १४४
राग और द्वेष १४८
३. निस्संदेह बुद्ध होगा १५०
४. महान परित्याग १५५
५. सुखी-सुरक्षित कौन?.....१६१
६. यथार्थ की अनुभूति.....१६६
७. सच्ची विजय १७२
८. वीतशोक सचमुच वीतशोक हुआ १७६
९. कथै न होईः कीयै होई.....१७९
१०. क्या पड़ा है 'नाम' में?.....१८२
११. मतलब की बात करें १८६
१२. सफल जीवन.....१९१
१३. धन्य विपश्यी! १९४
१४. धन्य धर्म!.....१९८
१५. लोक-कल्याण का पथ २००
एक, दो, तीन २००-२०२

विपश्यना साहित्य २०४

विपश्यना साधना के केंद्र २०८

प्रकाशकीय

'जागे पावन प्रेरणा' श्रद्धेय गुरुजी के लेखों का संकलन है। एक दृष्टि विशेष के साथ संपादित संकलन। मोतियों की माला की तरह चुन-चुन कर किसी प्रयोजन विशेष से पिरोया हुआ संकलन। यह ग्रंथ पूर्व में 'जागे मंगल प्रेरणा' नाम से छपा, लोकप्रिय हुआ और सुधी पाठकों द्वारा सराहा व अपनाया गया। मगर गुरुजी उस पर पुनर्विचार करते रहे। चुन-चुन कर मोतियों को पिरोने और इस पावन ग्रंथ को और भी अनुपम बनाने के लिए चिंतन-मनन करते रहे। हमें प्रसन्नता है कि अब हम इसके पुनः संपादित, संवर्धित एवं संशोधित रूप को दो भागों में विभक्त करके नये नामों से प्रकाशित कर रहे हैं।

दूसरे ग्रंथ का नाम 'जागे अंतर्बोध' रखा है। ये दोनों ग्रंथ वास्तव में एक लंबी शोध एवं साधना-यात्रा के शब्द-चित्र हैं। जीवन-यात्रा के शब्द-चित्र, अन्वेषण-यात्रा के शब्द चित्र, साधना-यात्रा के शब्द-चित्र और लोक-मंगल को समर्पित एक अनंत करुणा भरी विचार-धारा के शब्द-चित्र। पूज्य गुरुजी ने भगवान बुद्ध के जीवन को इतना करीब से देखा प्रतीत होता है कि ये शब्द-चित्र इतिहास व अतीत नहीं लगते। इनकी जीवंतता में भगवान बुद्ध की करुणाभरी मंगल मैत्री स्पंदित होती दीखती है। उनका शिक्षक-रूप साक्षात सामने खड़ा चित्त के विकार हरता दीखता है।

विपश्यना विशोधन विन्यास का यह गौरव है कि हम इतनी सुविचारित, सुभाषित एवं सुरुचिपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन कर पा रहे हैं। हमें भरोसा है कि ये ग्रंथ जहां एक ओर विपश्यी साधकों को साधना संबंधी विचार-वीथियों का सहज परिचय करायेंगे, वहीं सामान्य पाठकों को अपनी रोचक व सरल भाषा में भगवान बुद्ध के जीवन व साधना की सैकड़ों झलकियां भी दिखायेंगे।

हमें विश्वास है कि सुधी पाठक इस ग्रंथ-द्वय का उसी स्नेह से स्वागत करेंगे, जो हमें पूर्व में भी मिलता रहा है। सबके लिए मंगल-मैत्री!

मानद मंत्री,

विपश्यना विशोधन विन्यास

भूमिका

भूमिका

बोधिसत्त्व सिद्धार्थ गौतम पैंतीस वर्ष की अवस्था में सम्यक संबुद्ध बने। उन्हें परम सत्य निर्वाण का साक्षात्कार हुआ। उन्होंने इस सच्चाई का दर्शन किया कि मैं भवचक्र से नितांत विमुक्त हुआ। अब मेरा पुनर्जन्म नहीं है।

तदनंतर सात सप्ताह बोधिवृक्ष के आसपास विमुक्तिसुख में बिताए और अपने अनुभव पर उतरी नैसर्गिक सच्चाइयों का प्रत्यवेक्षण करते रहे। किस प्रकार अपनी ही नासमझी के कारण प्राणी निरयलोक से भवाग्र ब्रह्मलोक के बीच जन्म-जन्मांतरों तक भव-भ्रमण करते रहता है। विपश्यना-विद्या द्वारा अपने ही भीतर इस भवचक्र का साक्षात्कार करते हुए इससे मुक्ति पा लेता है। इसी जीवन में नित्य, शाश्वत, ध्रुव परमपद का साक्षात्कार कर लेता है। विपश्यना की इस विद्या ने मुझे विमुक्त किया। इसे जो सीख लेगा वही अभ्यास करते हुए देर-सबेर भवदुःख से विमुक्त हो ही जायगा। यह विद्या इतनी सरल, स्वच्छ और स्पष्ट है तो भी अपनी-अपनी सांप्रदायिक मान्यताओं और कर्मकांडों के जंजालों में उलझे हुए लोग इसे समझना ही नहीं चाहेंगे, इसे आजमा कर देखना तो दूर की बात हुई। कुछ समय तक ऐसा चिंतन चला। फिर उनके भीतर अनंत करुणा का झरना फूट पड़ा। अरे, कुछ लोग तो संसार में ऐसे हैं ही, जिनकी आंखों पर मिथ्या दार्शनिक मान्यताओं के जाले बहुत झीने हैं। वे इन जालों को दूर करके इस विद्या द्वारा नैसर्गिक सच्चाई का यथाभूत दर्शन कर अवश्य अपना कल्याण कर लेंगे। जितनों का हितसुख सधे, उतना ही भला। प्यासी धरती पर करुणा का मेघ-जल बरसना ही चाहिए। प्यासी धरती पर धर्मगंगा बहनी ही चाहिए। जो बहुत उपजाऊ होगी, वह इससे तत्काल लाभान्वित हो जायगी। जो ऊसर-बंजर होगी, वह इस तत्काल लाभ से वंचित रह जायगी। पर धर्मगंगा को तो बहना ही चाहिए।

और बह चली धर्मगंगा। जीवन के बचे हुए पैंतालीस वर्ष इस धर्मगंगा को प्रवाहित करने में ही बिता दिए। सत्य की खोज में नितांत निवृत्तमान हुआ व्यक्ति अब पूर्णता प्राप्त कर असीम प्रवृत्ति में लग गया। अहर्निश प्रवृत्ति-ही-प्रवृत्ति। रात को लगभग एक प्रहर शरीर को विश्राम देने के लिए लेटते, बाकी सारा समय असीम करुणचित्त से लोकसेवा-ही-लोकसेवा में लगे

रहे। इस सेवा के बदले कुछ पाने की भावना नहीं थी। जिसे अनुत्तर विमुक्त अवस्था प्राप्त हो गयी हो, उसे अब पाने के लिए और क्या रह गया भला! अब तो केवल बांटना-ही-बांटना था और जीवनभर मुक्तहस्त से, करुणचित्त से बांटते-ही-बांटते रहे।

जिस व्यक्ति की जैसी पृष्ठभूमि देखी, जिसका जैसा मानसिक धरातल देखा, जिसकी जितनी ग्रहण-क्षमता देखी, उसे उसकी समझने की शक्ति के अनुरूप ही उचित शब्दावली में, उपमाओं और उदाहरणों में, सरल-सरल लोकभाषा में, धर्म समझाया। सांप्रदायिक धर्म नहीं, सार्वजनीन धर्म, ऋत धर्म। नैसर्गिक नियमों की सीधी-सीधी सार्वजनीन बातें – यह कारण होगा तो यह परिणाम आयगा ही; यह कारण नहीं होगा तो यह परिणाम भी नहीं आयगा। मन में विकार जागेगा तो उसके साथ दुःख जागेगा ही। विकार जितना-जितना बढ़ेगा, दुःख उतना-उतना ही बढ़ता जायगा। विकार जागना बंद हो जायगा तो दुःख स्वतः बंद हो जायगा। निसर्ग का यह सार्वजनीन, सार्वदेशिक, सार्वकालिक नियम। इसी नियम को स्वानुभूति द्वारा जान कर मानस की जड़ों तक विकार-विमुक्त होने की विपश्यना-विधि सिखाई। पैंतालीस वर्षों तक यही सिखाते रहे। दुख सार्वजनीन है और दुख से बाहर निकलने का यह उपाय (विपश्यना) सार्वजनीन है।

प्रत्येक वर्षावास के तीन-चार महीने किसी एक स्थान पर विहार करते। अधिकतर श्रावस्ती या राजगृह जैसे घनी आबादी वाले नगरों के समीप बने हुए विहारों में रहते, ताकि नगर के अधिक-से-अधिक लोग इस मांगलिक विद्या को सीख कर लाभान्वित हो सकें। वर्षावास के बाद बाकी सारा समय उत्तर भारत के गांव-गांव, निगम-निगम, नगर-नगर में धर्मचारिका करते हुए लोकसेवा करते और लाखों-करोड़ों लोगों को विकार-विमुक्ति की विपश्यना-विधि का संदेश देते, उसका समुचित निर्देशन देते।

देश के हर संप्रदाय के, हर मान्यता के, हर जाति, वर्ग व वर्ण के, हर पेशे के, हर प्रदेश के लोग भगवान के संपर्क में आए और उनके बताए मार्ग पर चल कर मंगल-लाभी हुए। इसी जीवन में लाभान्वित हुए।

चाहे मगधनरेश बिंबिसार हो या कोशलनरेश प्रसेनजित, चाहे महारानी मल्लिका हो या महारानी खेमा, चाहे सेनापति बंधुल हो या सेनापति सिंह, चाहे राजपुरोहित कात्यायन हो या राजवैद्य जीवक, चाहे दानवीर सद्गृहस्थ अनाथपिंडिक हो या भिखमंगा कोढ़ी सुप्पबुद्ध, चाहे राजमहिषी श्यामावती हो

या दासी खुज्जुत्तरा, चाहे संन्यासी जटिल काश्यपबंधु हों या परिव्राजक दारुचीरिय, चाहे सद्गृहिणी विशाखा हो या नगरवधू अंबपाली, चाहे ब्राह्मण महाकाश्यप हो या भंगी सुनीत, चाहे ब्राह्मण सारिपुत्त हो या चांडालपुत्र सोपाक, चाहे सदाचारी सीलव हो या हत्यारा अंगुलिमाल; जो भी भगवान बुद्ध के संपर्क में आया, जिसने भी धर्मगंगा में डुबकी लगाई, जिसने भी विपश्यना-साधना का अभ्यास किया, वही बदल गया।

पैंतालीस वर्षों तक भगवान ने हजारों सदुपदेश दिए। उनके परिनिर्वाण के चंद महीनों के बाद ही उनके पांच सौ प्रमुख भिक्षु शिष्यों की संगायन समिति ने भावी पीढ़ियों के लाभार्थ इन उपदेशों का संकलन-संपादन किया, जो कि तिपिटक के नाम से जाना गया। कुछ समय बाद उन पर भाष्य (अर्थकथाएं) और टीकाएं लिखी गयीं। यह सारा साहित्य बहुत विशाल है। यद्यपि भारत ने इसे खो दिया, पर पड़ोसी ब्रह्मदेश ने कल्याणी विपश्यना-विद्या के साथ-साथ इस विशाल वाङ्मय को भी शुद्धरूप में सुरक्षित रखा है।

इस संगायन समिति ने भगवान के उपदेशों को संपादित करते हुए उनमें से अनेकों का संदर्भ भी संकलित किया, यानी अमुक उपदेश कब, कहां, किसे, क्यों और किस परिस्थिति-परिवेश में दिया गया। उपदेशों की ये भूमिकाएं उन साक्षी भिक्षुओं द्वारा संकलित किये जाने के कारण ऐतिहासिक महत्त्व रखती हैं। यह समस्त साहित्य अब पालि भाषा में, बर्मी लिपि में उपलब्ध है। जब नागरी लिपि और हिंदी भाषा में प्रकाशित होगा तो देश की एक विलुप्त अनमोल संपदा प्रकाश में आयगी। इस विशाल साहित्य में तत्कालीन भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, प्रशासनिक, शैक्षणिक, व्यापारिक, सामाजिक, पारिवारिक अवस्थाओं का आंखों देखा एक बृहत रंगीन चित्रपट प्रस्तुत होगा। यद्यपि उस संकलन का यह रंचमात्र भी उद्देश्य नहीं था कि उस समय के ऐतिहासिक इतिवृत्त को संपादित किया जाय, उद्देश्य तो केवल यही था कि प्रत्येक भूमिका तत्संबंधित उपदेश के आशय को अधिक स्पष्ट करने और आध्यात्मिक प्रेरणा प्रदान करने में सहायक हो। यही कारण है कि सार्वजनीन और सार्वकालिक सनातन धर्म का आधार लिए हुए यह साहित्य आज भी उतना ही तरोताजा और प्रेरणास्पद है।

ऐसी कुछ एक घटनाएं इन लेखों में प्रकाशित हुई हैं। वे विपश्यी साधकों को ही नहीं, सभी अध्यात्म-प्रेमियों को प्रेरणा प्रदान करेंगी। विपश्यना-साधना

सार्वजनीन है। इस पर किसी एक संप्रदाय का प्रभुत्व नहीं है। यह सब के लिए समानरूप से उपादेय है, समानरूप से सुलभ है।

यह प्रकाशन बहुजन के हितसुख का कारण बने, लोगों में साधना के प्रति प्रेरणा जागे और वे इसका अभ्यास करके दुःख से विमुक्ति पा लें! सबका मंगल हो! कल्याण हो!!

कल्याण मित्र,

स. ना. गो.

२. तपन बुझी

जब कोई साधक विपश्यना में गंभीरता से प्रवृत्त होता है तो बहुधा उसे बहुत तप्त संवेदनाओं में-से गुजरना पड़ता है। यह ताप मौसम का ताप नहीं होता, क्योंकि बहुत बार देखा गया है कि शीत ऋतु में अथवा हिमालय में लगे शिविरों में लोग कंबल और रजाइयां ओढ़-ओढ़ कर साधना करने बैठते हैं, परंतु विपश्यना आरंभ करने के बाद अनेकों को इतनी तप्त गर्मी महसूस होती है कि उन्हें कंबल और रजाई ही नहीं, तन पर के कुछ कपड़े भी उतारने पड़ जाते हैं। यह शरीर का ही ताप नहीं है, क्योंकि साधक को इसका तापमान शरीर के तापमान से कहीं अधिक महसूस होता है। शरीर का तापमान हो तो लगभग वही तापमान सतत बना रहना चाहिए। पर ऐसा नहीं होता। कुछ देर के लिए किसी-किसी साधक को ऐसे लगता है जैसे उसका सारा शरीर जलती भट्ठी में झोंक दिया गया है। साधक उस समय साधना बंद कर दे, बहिर्मुखी हो जाय, किसी अन्य प्रवृत्ति में लग जाय तो सारी तपन दूर हो जाती है। साधना शुरू करते ही फिर वैसी ही तपन महसूस होने लगती है। समझदार गंभीर साधक हो तो ऐसे समय इस ताप के प्रति अनित्यबोध और तटस्थभाव बनाए रखता है। इसके प्रति जरा भी प्रतिक्रिया नहीं करता, तो देखता है कि देर-सबेर सारी तपन समाप्त हो जाती है। परिणामतः बहुत शीतलता महसूस होती है – ऐसी आंतरिक शीतलता, जैसी पहले कभी नहीं अनुभव की। न तो यह तपन शरीर की स्वाभाविक तपन है और न ही मौसम की। ऐसे ही यह शारीरिक शीतलता न शरीर की स्वाभाविक शीतलता है और न मौसम की। यह पूर्व-संचित मनोविकारों का ताप है, जो कि तटस्थ स्वभाव वाली विपश्यना-साधना के कारण उभरता है और तटस्थता बनाए रखें तो सहजभाव से उसका निरोध हो जाता है, उपशमन हो जाता है। विपश्यना की समता से ही इन पूर्व कर्म-संस्कारों की उदीर्णा होती है, निर्जरा हो जाती है; इनका क्षय हो जाता है। इन कर्म-संस्कारों के ताप की जितनी निर्जरा हो जाय, उतनी-उतनी सुख-शांति साधक महसूस करता है –

उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो।

साधना के दौरान अनेक साधकों को इस भीतरी तपन के मारे सारी रात नींद नहीं आती। साधक नासमझ होता है तो इसकी वजह से व्याकुलता पैदा

३. यह क्षण

जिस प्रकार हंडिया में जले हुए शाक को देख कर किसी साधिका के मन में अपने सभी कर्मबीजों को विपश्यना साधना द्वारा भून लेने का प्रेरक उत्साह जागा, उसी प्रकार अतीतकाल के अनेक ऐसे प्रसंग हैं जिनसे प्रेरित होकर साधक-साधिकाएं विपश्यना-साधना में अत्यंत उत्साहपूर्वक जुट गये और परम मुक्त अवस्था को प्राप्त किया।

कोशलनरेश प्रसेनजित के ब्राह्मण राजपुरोहित की पुत्री दँतिया। भगवान के संपर्क में आयी, यानी धर्म के संपर्क में आयी। श्रावस्ती में अनाथपिंडिक द्वारा निर्मित जेतवन विहार में अनेक भिक्षु-भिक्षुणियां, गृहस्थ पुरुष-स्त्रियां ध्यान-साधना किया करते थे। यह श्रद्धाबहुल ब्राह्मणपुत्री भी यहीं कुछ दिनों साधना सीखती रही। कुछ प्रगति हुई तो गृहस्थ न रह कर भिक्षुणी बनने का वैराग्यभाव मन में जागा। अतः महाप्रजापती गौतमी से प्रव्रज्या ग्रहण कर भिक्षुणी बनी और विपश्यना-भावना में रत रहने लगी।

एक बार भिक्षुणी संघ के साथ क्रमशः यात्रा करते हुए राजगृह गयी और वहीं भिक्षुणी विहार में रहने लगी। एक दिन मध्याह्न भोजन के बाद गिज्झकूट पर्वत पर किसी पेड़ के नीचे विचारमग्न बैठी थी। तब उसने देखा कि एक महाबलशाली विशालकाय हाथी नीचे नदी में जलविहार करके तट पर विश्राम कर रहा है। इतने में एक अंकुशधारी महावत वहां आया। उसने हाथी को आदेश दिया "पांव पसार"। हाथी ने अपना पांव पसार दिया, जिस पर चढ़ कर महावत हाथी की पीठ पर जा बैठा। हाथी उसके आदेशों को मानते हुए शहर की ओर चल दिया।

ऐसा महान बलशाली विपुल देहधारी गजराज यदि चाहता तो उस छोटे-से आदमी को अपने पांव तले कुचल कर उसका कचूमर निकाल देता, परंतु उसने ऐसा नहीं किया। वह मनुष्य का गुलाम हो गया था। उसके हुक्म का ताबेदार बन गया था। उसका सेवक बन गया था। हितैषी बन गया था।

भिक्षुणी सोचने लगी, जब एक अंकुशधारी महावत ऐसे शक्तिशाली प्राणी को अपने वश में कर सकता है तो मैं अपने मन को वश में क्यों नहीं कर सकती? अवश्य कर सकती हूं। इस प्रसंग से प्रेरणा प्राप्त कर भिक्षुणी दँतिया ने दृढ़ संकल्प किया और समीप के वन में प्रवेश कर मुक्तिदायिनी विपश्यना के

७. गिरो और उठो

नंदक और भरत अपने पूर्व पुण्यों के फलस्वरूप भगवान के जीवनकाल में चंपा नगरी के एक धनी गृहस्थ के घर जनमें। बड़े होने पर उन्होंने एक दिन सुना कि उसी नगरी का सोण नामक अत्यंत सुकोमल, सुकुमार और ऐशो-आराम में पला हुआ महाधनी-पुत्र अपना घरबार छोड़ कर भगवान के पास प्रव्रजित हो साधना करते हुए अरहंत अवस्था को प्राप्त हो गया है। यह सुन कर दोनों भाइयों के मन में अत्यंत धर्मसंवेग जागा और दोनों प्रव्रजित होकर विपश्यना-साधना के अभ्यास में जुट गये। बड़ा भाई भरत अपने सत्प्रयत्नों द्वारा थोड़े ही समय में सारे आस्रवों से छुटकारा पा कर अरहंत अवस्था को प्राप्त हो गया। परंतु छोटे भाई नंदक की राह में बहुत बाधाएं आईं यद्यपि उसने प्रयत्न तो बहुत किया परंतु अनेक जन्मों के संगृहीत विपुल कषायों के कारण एक-पर-एक बाधा आती रही, अंतराय आता रहा। शरीर की संवेदनाओं के आधार पर अनित्यबोध की प्रज्ञा नहीं जाग सकी। अतः नंदक बहुत निराश हो उठा। साधना करने का सारा उत्साह खो बैठा। भरत ने अपने भाई की यह दशा देखी तो उसके मन में पुनः उत्साह जगाने के लिए कुछ देर धर्मचर्चा करता रहा। साधना की विधि समझाते हुए वह अपने भाई के साथ ध्यान-केन्द्र के बाहर टहलने निकल गया। कुछ दूर जाने पर रास्ते के किनारे बैठ कर भाई को उत्साहित करने के लिए धर्म-प्रबोधनी बातें करता रहा।

इतने में देखा कि बैलगाड़ियों का एक कारवां चला आ रहा है और देखा कि उनमें से एक गाड़ी का चक्का गहरे दलदल में धँस गया है। बैल स्वयं भी घुटने-घुटने कींचड़ में धँसा हुआ गाड़ी चलाने का प्रयत्न करता रहा, पर असफल रहा और अंततः वहीं गिर पड़ा। गाड़ी वाले ने तुरंत बैल को जुए से खोल कर बाहर निकाला और दाना-पानी दे कर स्वस्थ किया। कुछ देर बाद पीठ थपथपा कर फिर गाड़ी में जोत दिया। बैल उत्तम जाति का था। प्रशिक्षित था। उसने अपना सारा बल लगाया और गाड़ी को दलदल के बाहर निकाल कर आगे बढ़ चला।

यह देख कर भरत ने भाई नंदक को कहा, "देखा, इस बैल के पुरुषार्थ को?

१४. सविवेक श्रद्धा

तीन वेदों में पारंगत विद्वान वक्कलि ब्राह्मण भगवान बुद्ध के आश्रम में गया। महापुरुषों के बत्तीस लक्षणों से परिपूर्ण तथागत के सुंदर तेजस्वी शरीर ने, उनके प्रभावशाली ओजस्वी व्यक्तित्व ने उस भावुक ब्राह्मण को सहज ही आकर्षित कर लिया। उन भगवान अंगीरस के अंग अंग से जो प्रभा-रश्मियां प्रस्फुटित हो रही थीं, उन्होंने वक्कलि ब्राह्मण को भावाभिभूत कर दिया। उनके अंतर से उमड़ने वाली अपरिमित मैत्री और करुणा-तरंगों का गहरा प्रभाव भी था ही। वक्कलि ने निर्णय किया कि मैं भगवान के इस रूप का ही दर्शन करता रहूंगा। अतः वह घर से बेघर हो, दाढ़ी-मूंछ मुँड़ा कर, प्रव्रजित हुआ और भिक्षु संघ में सम्मिलित हो गया। केवल इसीलिए कि उसे भगवान का सान्निध्य-सुख अधिक से अधिक प्राप्त हो सके। अब वह भक्ति के आवेश में रस-लोलुप भँवरे की तरह भगवान की रूप-माधुरी के चारों ओर मँडराने लगा। न उसे शील का ध्यान, न समाधि द्वारा चित्त एकाग्रता का अभ्यास और न ही विपश्यना द्वारा प्रज्ञा जागृत करने का ही कोई प्रयास। जब देखो तब, भगवान के सामने बैठा रहे और उनके प्रभा-मंडित चेहरे को अपलक निर्निमेष देखता रहे। करुणामय भगवान तथागत ने देखा कि यह नया भिक्षु भक्ति-भावावेश में इतना अंधा हो गया है कि धर्म के सत्य स्वरूप से दूर जा पड़ा है। उन्होंने उसे फटकारते हुए कहा, "ओ भोले भिक्षु, मेरे इस शरीर को पागलों की तरह क्या देख रहा है? मेरे इस रूप, इस काया पर क्या ध्यान लगा रहा है? यह काया भी भीतर से उतनी ही गंदी है, जितनी कि किसी भी अन्य की काया। यदि मुझे देखना है तो मेरे भीतर समाए हुए धर्म को देख। जो धर्म को देखता है, वही मेरे सच्चे स्वरूप को देखता है। जो सही माने में मुझे देखता है, वह मेरे भीतर समाए हुए सत्य धर्म को ही तो देखता है, बाह्य शरीर को नहीं।" –

यो खो धम्मं पस्सति, सो मं पस्सति; यो मं पस्सति, सो धम्मं पस्सति।

महाकारुणिक की इस धर्म फटकार से भावावेश के अंधकार में डूबे हुए वक्कलि ब्राह्मण के प्रज्ञा चक्षु खुले। उसे भगवान की यह बात समझ में आयी कि वे तो सचमुच धर्म के मूर्त स्वरूप हैं। अतः उनका दर्शन यदि काया के दर्शन तक ही सीमित रहा तो पागलपन ही रहा। उनके दर्शन में सत्य धर्म का दर्शन होना ही चाहिए, **दिट्ठधम्मं निब्बाणं** का दर्शन होना ही चाहिए। और यह